श्रावक गिरधरलाल हीराभाई ने विक्रम संवत् १९४६ के साल मे अहमदाबाद मे छपवाया था, परंतु इस्की कापियें अब बि-लकुल नही मिलती हैं ॥

थोडे ही दिनो के पहिले मरुधर देशान्तरगत श्री लोहावटग्राम मे शान्त मूर्त्ति मुनिराज श्री त्रैलोक्य सागरजी का पदार्पण हुवा उस समय उक्त मुनिराज ने उपदेश दिया के इसस्तोत्र केछपने की अत्या-वश्यक्ता है, इत्यादि २ उनके बचनामृत से मैरी इच्छा हुई के इस्को मै छपवाकर प्रसिद्ध करूंगा तत्पश्चात् मैरे इस उत्साह को मु-निराज श्री के सुशिष्यश्री आनंदसागरजी ने तथा वर्तमान मे सूरत में बिराजे

हुवे श्री मती गुरुणीजी श्री पुण्य श्रीजी के सुशिष्या श्री सुवर्णश्रीजीने बडाया परंतु मैरी यह इच्छा हुई के इसका गुजराती भाषान्तर न छप कर हिन्दी बनकर छपे तो ठीक मैरी इस इच्छा को रतलाम निवासी मि० शेरसिंहजी गौडवंशी (जैन क्षत्रिय) ने पूर्णकी याने आपने बडेही परिश्रम के साथ इसकी भाषा बना कर दी, वास्ते आपको अन्तः करण पूर्वक धन्यवाद देता हुं ॥

इसमे मूल पाठ व संस्कृत टीका तो पूर्ववत् है किन्तु गुजराती के स्थानमें अबकी हिन्दी भाषान्तर छपा है ॥

इसके बाद में जयमहायस भी छपा है इस पुस्तक के अन्त में वीरपुत्र श्री आ-

नंद सागरजी का बनाया हुवा श्रीलौद्रव पुर पट्टन (जेसलमेर के पास) मे विराजे हुवे श्री चिन्तमणपार्श्वनाथ स्वामी का स्तवन तथा श्री हरीसागरजी कृत पाली के पार्श्वनाथजी का स्तवन भी छपा है॥

इस्के प्रूफादिको शोधन करने का काम भी मि० शेरसिंहजी ने ही किया है॥

कदाचित् उपयोग शुन्यतावश अथवा छापेके दोष से कोइ अशुद्धि रह गई हो तो सज्जन जन शुद्ध करके पढ़ें॥ इति शुभम्॥

श्री संघका दास

हजारीमल रतनलाल

प्रसिद्ध कर्त्ता

उपोद्घात.

अत्रायं वृद्धसंप्रदायः ॥ पुरा भगवान् श्री-
अभयदेवसूरिर्गूर्जरत्रायांशंभाणकस्थाने विह्
तवान्। तत्र च महाव्याधिवशेनातीव शरी-
रापाटवेसति प्रत्यासन्ननगरग्रामेभ्यः पाक्षि-
कप्रतिक्रमणाय समाजिगमिषुर्विशेषेण समा-
हुतो मिथ्यादुः कृतदानाय सर्वश्रावक संघः।
त्रयोद श्यर्द्धरात्रे चाभाणि शासनदे वतया।
प्रभो स्वपिषि जागर्षिवा। ततो मन्दस्व-
रेणोक्तं भगवता। जागर्मि। पुनरूचे तया,
प्रभो शीघ्रमुत्तिष्ठ। नवैताः सूत्रकुक्कु टिका
उन्मोचय। भगवानाह। न शक्नोमि! देवता
प्राह। कथं न शक्नोषि अद्यापिचिरकालं
वीरतीर्थं प्रभावयिष्यसिनवाङ्गीवृत्तिंच विधा-

स्यसि । भगवानवोचत । कथमेवं विधशरीरो विधास्यामि । देवतावादीत् । स्तम्भनकपुरे सेढीकानद्यु पकण्ठे खंखरप लाशमध्ये श्री पार्श्वनाथः स्वयंभूरस्तितत्पुरो देवान्वन्दस्व येन स्वस्थशरीरो भवसि । ततः सा तिरोऽभूत् । प्रातः क्षणे प्रत्यासन्ननगरग्रामेभ्यः समागत्य श्रावकसंघेन ववन्दे भगवान । भणितं च भगवंता । स्तम्भनकपुरे श्रीपार्श्वनाथं वन्दिष्यामहे । श्राद्धैरचिन्ति । नूनं कश्चिदुपदेशः प्रभूणां येनेदमावेदयन्ति । ततस्तैरपिभणितम् । वय मपि वन्दिष्यामहे । वाहनेन गच्छतः प्रभोर्मनाक् शरीरसौख्यमभूत् । ततो धवलकपुरात्परतः पादचारेण विहृतवान् । स्तम्भनकपुरं श्रात्र

काः सर्वतः पार्श्वनाथमवालोकयन्तो गुरुणा न्निहिताः । खंखरपलाशमध्येऽवलोकयत । ते तथा चक्रुः । ततस्तत्र दृष्टा श्रीपार्श्वनाथप्रतिमा केवलं गोपालवचनात् । तत्र च प्रत्यहं गौरेका समागत्य प्रतिमामूर्ध्नि क्षीरं क्षरति । ततो हृष्टैः श्रावकैर्यथा दृष्टं निवेदितं गुरोः पुरतः । ततः श्रीअभयदेवसूरिस्तत्र गत्वा दर्शनमात्र एव स्तोतुंप्रववृते जयतिहुअणेत्यादिभिर्द्वात्रिंशतातात्कालिकैर्नमस्कारैः । ततोन्त्यनमस्कारद्वयमतीव देवताकृष्टिपरमवगम्याभिदधे देवतया । भगवंस्त्रिंशतापि नमस्कारैरध्येतॄणां न्नङ्क्षधास्ये ऽतोन्त्यनमस्कारद्वयमस्मदाकृष्टिकरत्वेन नः कष्टावहमित्यपसार्यताम् तदनुरोधात्तथा चक्रे । ततोऽचिन्त्यप्रभावत्वा

त्प्रभुकृतनमस्कारैः स्वयं प्रत्यक्षीभूते श्रीपार्श्व नाथे विधिना चैत्यवन्दनं संघेन सह विदधे । ततस्तत्र कारितं श्रावकसंघेनोत्तुङ्गतोरणं देवगृहम् । ततो रोगोपशमात्सुस्थीभूतशरीरे प्रभुणा श्रीअभयदेवसूरिणास्थापितस्तत्र श्रीपार्श्वनाथः । विदधे च प्रतिष्ठा । प्रसिद्धं च महातीर्थमिति । सेयंनमस्कारद्वात्रिंशिका किंचिद्व्याख्यायते ॥

॥ उपोद्घात का भाषान्तर ॥

इस स्तोत्र की उत्पत्ति के विषे टीकाकार लिखते हैं के वृद्ध परंपरा से इस प्रकार इतिहास चला आता है ॥

किसी समय में महान् समर्थ श्री अभय देवसूरिजी, गुजरात देश में शंभाणक नामक ग्राममे (पाटण के पास) विचरते थे, वहां पर जब कि उन्होंने देखा के उनका शरीर कुष्टरोक से जर्जरीभूत् हो गया है, आस पास के गांवकों मे श्री संघको पाक्षिक प्रतिक्रमण करने इस अभिप्राय से बुलाया के अन्त के सर्व से क्षमत क्षामणा करलेंगे, त्रयोदशीके दिन मध्यरात्री मे शासन देवने आकर कहा, हे प्रभु !

आप जगते हो के सोते हो? कारण के सूरीश्वरजी अपने रोग से बहुत अशक्त थे, मंदस्वरसे बोले "जागता हुं" तब शासन देवता बोले हेप्रभु? शीघ्रउठो और ये नव कुकडिये सूतकी गडगई हैं सो इन्हे निकलो, तबसुरीश्वरबोले के मै इनकुकडियों को निकालनेको समर्थनहीहुं तब देवताबोले "क्योंनही? अद्यापितो बहुतकालपर्यंत वीर प्रभुके शासनका उद्योत करोगे० और नवअ ङ्गकी टीका करोगे तबसुरीश्वरबोले इस प्रकार के वे शरीरसे मै कैसे टीका करूंगा; तबदेवबोले स्थंभनकपुर(खमाच)(Cambay) के पाससे ढी नदीके किनारे खांखरोके वनमे पत्तोंका ढगलाहै उसमे श्रीपार्श्वनाथस्वामिकी मू

रत्तैं ढकीहुईहै वहमूर्त्ति विनघड़ी याने आपसे बनीहुईहै सो वहां देववंदन करो कि जिससे- आपकाशरीर स्वस्थ होजावे एसा कहकरशा- सन देव अतरध्यान हो गये

प्रातः काल होतेही आस पासका संघ आया और सुरिजी को वंदना की सुरीश्वरजी बोले भाईयोंहम स्थम्भनकपुरके पासमे श्रीपार्श्वना थप्रभुको वंदना करने चलेगें इसप्रकार सुरि वाक्य सुनकर श्रावक संघने विचाराके निश्च य किसी देवताने उक्त सुरिजीको उपदेश दि दिया है कि जिससे ऐसी अशक्ती मेभी वि हारका फरमाते हैं तब सर्व जने सुरीश्वर से बोले कि हमभी आपके साथ चलेगें तत् प श्चात् सूरिजी को झोली मे बिठाकर सर्व सं

घचला रास्ते मे कुछ २ शरीर ठीक
होनेलगा घोलके के आगेतो इतना श-
रीर अच्छा होगया के झोली को छोड़
पगपैदल विहारकरना शुरू किया स्थं
भनकपुरके पास आये सूरिश्वरजी की आज्ञा
से संघने श्रीपार्श्वनाथजीको पत्तो मेसे निका-
लना शुरू किया तब गुरु बोले के खांखरों
के बन मे पत्तोंके नीचे देखो. तब एक
गुवालिया के बचन से प्रतिमा मिल गई
याने जब कि संघने गुवालिये को प्रतिमा
संबंधी पूछा तो उसने उत्तर दिया के एक
जगे एक गैयानित्य आकर खड़ी रहती है
और प्रतिमा के मस्तकपर थनोंमें से दुध
झाड़ जाती है यह बात सुनकर संघने

खुश हो कर यह हकीगत गुरू महाराज के पासकही तब श्री अभयदेवसूरिजीमहा-राज वहां पधारे और स्थान देखते ही जय-तिहु अण" आदि बत्ती सगा था तत्काल बना कर स्तुति करी ॥

तत्पश्चात् अधिष्टायक देवता ने आकर कहा "हे महारज इस स्तोत्रके अंतकी दो गाथा निकालडालो, क्योंके वे हमको आ-कर्षण करने वाली हैं सो भविषय में हम को कष्टकारी हो जावेंगी इस स्तोत्रके पाठ करनेवालों का कल्याण तो मै तीसगाथा से ही कर दुंगा" देवता के अत्याग्रहसे श्री अभयदेव सूरिजी ने अन्तके दो काव्य निकाल डाले ॥

तत्पश्चात् उस काव्य की अतुलितम हिमासे श्रीपार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा प्रकटहोने पर संघ सहित चैत्यवंदन किया वाद श्रावको ने रमणिक तथा उन्नत एक मंदर बनवाया तथा स्वस्थ शरीरवाले श्री अभयदेवसूरीजी ने उस प्रतिमा की स्थापना करवाई तथा प्रतिष्ठा कराई तत्पश्चात् वह वर्के नारी तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुवा उसी द्वात्रिंशिका याने जयतिहुअणकी किंचित व्यख्या करता हुं ॥

टीका कार ॥

इति

॥ 'जय तिहुअण' स्तोत्र ॥
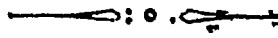
मूलकाव्यम् १

गेलावृत्तम्.

जय तिहुअणवरकप्प-

रुक्ख जय जिण-धन्नंतरि ।

जय तिहुअण-कल्लाण-

कोस दुरिअ-क्करि-केसरि ॥

तिहुअणजण-अविलंघि-

आण भुवणत्तय-सामिअ ।

कुणसु सुहाइ जिणेस,

पास थंभणयपुरट्ठिअ ॥ १ ॥

संस्कृतटीका. १)

(जयेति) जय मर्वोत्कर्षेण वर्त्तस्व । त्रिभुवनवरकल्पवृक्ष त्रिलोकमनोरथकल्पद्रुम १ जय जिनधन्वन्तरे वैद्यविशेष २ जय त्रिभुवनकल्याणकोश कोशो भाण्डागारः ३ दुरितकरि केसरिन ! उपद्रवहस्तिसिंह ! ४ त्रिभुवनजनेनाविलङ्घिताज्ञ अखण्डितशासन ! ५ भुवनत्रयस्वामिन् ६ कुरुष्व सुखानि जिनेश ! पार्श्व ! स्तम्भनकपुरस्थित ! इति षट् द्वाराणि ॥ १ ॥

(भाषा टीका १)

हे तिहुअणवरकप्परुक्ख (हे त्रिभुवन वरकल्पवृक्ष) तिहुअण–तीन जगत के विषे वर–श्रेष्ठ, कप्परुक्ख–कल्पवृक्ष समान. अर्थात् तीन जगत में रहनेवाले प्राणीमात्र

के प्रधान कल्पवृक्ष की तरह सर्व मनोरथ पूर्णकरनेवाले ऐसे हे पार्श्वनाथस्वामी ! आप जय- जयवंता वर्तो अर्थात् सर्वोत्कृष्टपणे वर्त्तो। श्रेष्ठ कल्पवृक्ष कहने का तात्पर्य यह ज्ञात होता है कि कल्पवृक्ष तो जो पुरुष स्वशरीर से उसके तले जावे उसके मनोवांछित फल देता है, पर श्रीपार्श्वनाथ स्वामी तो मन में चिन्तन मात्र करने से ही सर्व मनोरथ पूर्णकर देते हैं। अथवा तीनो जगत में रहने वाले प्राणीमात्र के वर- वाञ्छित वरदान को देने में कल्पवृक्ष-समान।

हे जिणधन्नंतरि (हे जिनधन्वतरे) जिन-जीते है बाह्याभ्यन्तर शत्रुओं को जिनोंने याने सामान्यकेवली प्रमुख, उनके विषे ध

न्वन्तरि-धन्वन्तरि नामा महावैद्यसमान, इस विशेषण से यह तात्पर्य मालूम होताहै कि पूर्वमें स्तुतिकरनेवाले अपने शरीर में स्थित रोग की शान्ति होने के अनन्तर पुनः संसार के रोग की शान्ति की इच्छा करते हैं।

हे तिहुअणकल्लाणकोस (हे त्रिभुवनकल्याण कोष) त्रिभुवन– तीन जगत में रहे हुवे कल्याण– श्रेयमाल, उनके रहने को कोष– भंडार समान, अथवा तीन जगत में रहे हुवे प्राणीमात्र को कल्याण–द्रव्यभावश्रेय के देने के स्थानभूत, इससे यहाँ यह तात्पर्य मालूम होता है कि स्तुतिकर्ता पार्श्वनाथस्वामी का शीघ्रही प्रकट दर्शन करना चाहते हैं।

हे दुरिअकरिकेसरि (हे दुरितकरिकेसरि-

न्) दुरित-पाप अथवा उपद्रव रूप जो करि-हस्ती उसको नाशकरने में केसरि-सिंहसमान, अर्थात् जैसे सिंह के नाद से वन के हस्ती पलायन करजाते हैं वैसेही आपके नाममात्र के उच्चारण से पाप और उपद्रव दूरहोजाते हैं ।

हे तिहुअणजणअविलंघिआण (हे त्रिभुवजनाविलङ्घिताज्ञ) त्रिभुवन-तीनभुवन में रहे हुवे जन-लोग उन्होसे अविलंघिताज्ञ-नहीं उल्लघन करी गयी है आज्ञा जिनकी, अर्थात् तीन जगतमें ऐसा कोई भी समर्थ नहीं कि जो आपकी आज्ञा खण्डन कर सके अर्थात् देव मनुष्यादि सभी आपकी आज्ञा शिरपर चढाते हैं. हे भुवणत्तयसामि (हे भुवनत्रयस्वामिन्)

भुवनत्रयस्वामी— तीन भुवन के स्वामी (स्वं-प्रताप ऐश्वर्य अथवा ३४ अतिशय हैं जिन के उनको स्वामी कहना) ।

हे थंभणयपुरट्ठिय (हे स्तम्भनकपुरस्थित) स्थम्भनपुर (खमाच) के अंतर स्थित ऐसे, हे पास- (हे पार्श्व) हे जिणेस (हे जिणेश) हमारे सुहाई- (सुखानि) मनोवांछित सुख, कुणसु (कुरु) करो अर्थात् हमको सर्व प्रकार से सुखी करो ।

इसमें तीन वख्त जो जयशब्द आया है सो भक्तिवश है इसलिये पुनरुक्ति दोष नहीं है यहां तीन पदों मे जो छे वाक्य हैं उनका छे द्वारवत् अलग अलग वाक्य लाकर अलग अलग गाथाओं मे वर्णन करते हैं ।

मूलकाव्यम्. २

तइ समरंत लहंति,
झत्ति वर-पुत्त-कलत्तइ।
धण्ण-सुवण्ण-हिरण्ण।
पुण्ण जण भुंजइ रज्जइ॥
पिक्खइ मुक्ख असंख-
सुक्ख तुह पास पसाइण।
इअ तिहुअण वर-कप्प-रु-
क्ख सुक्खइ कुण मह जिण२

(संस्कृतटीका. २)

(तईति) त्वां स्मरन्तो यस्माल्लभन्ते झगिति शीघ्रं व-
वरपुत्रकलत्राणि १। तथा धान्य व्रीह्यादि, सुवर्णमघटितं

हेम, हिरण्यं घटितम्, अथवा सुवर्णं सामान्येन, हिरण्यं तु रूप्यं, तैः पूर्णानि भृतानि राज्यानि भुञ्जन्ते प्राप्नुवन्ति जनाः। तथा मोक्षमसंख्यसौख्यमनन्तसुखं पश्यन्त्यनुभवन्तीत्यर्थः। हे पार्श्व! तव प्रसादने, इति हेतोः त्रिभुवनवरकल्पवृक्ष सौख्यानि कुरु मम जिन ॥ २ ॥

(भाषा टीका २)

(हे भगवन्) तई--(त्वां)तुमको समरंत (स्मरन्तः)स्मरणकरते हुवे, जण (जनाः) मनुष्य, झत्ति (झटिति) शीघ्रही। वरपुत्तकलत्तइ (वरपुत्रकलत्राणि) श्रेष्ठ पुत्र और स्त्रियों को, लहंति (लभन्ते) प्राप्त करलेता है। इसके अंदर जो " वर ' शब्द पडा हुवा है वह यद्यपि संसार संबन्धी आज्ञाकारी व पतिव्रतादि गुण का भाषक है तथापि यहां इस्का अर्थ ऐसा करना "वर"धर्म में साहाय्य देने वाले, तथा—

धन्न सुवन्न हिरन्न पुन्न जण भुंजई रज्जइ—
(धान्यसुवर्णहिरण्यपूर्णानि राज्यानि भुञ्जन्ते)
धन्न-धान सुवर्ण-सोना, हिरण्य—भूषण आदि
से परिपूर्ण ऐसे राज्य को भोगता है ।
इस्मे धान्य को प्रथम पद इस लिये दिया
कि अन्य कोई पदार्थ न भी हो तो इससे दे-
ह रह सक्ती है और देह रहने से
ही आपकी भक्ति होसक्ती है ।
तथा हे पास (हे पार्श्वनाथ) तुह-आपके, प-
साइण (प्रसादेन) कृपा करके , असंखसुक्ख
(असंख्यसौख्यम्) असंख्यातसुखवाले, मुक्ख
(मोक्षं) मोक्ष को, पिक्खई (पश्याति) देखलेते
हैं अर्थात् आपकी स्तुति से स्वर्गादि नाशवंत
सुख मिलें इतनाही नहीं वरन शाश्वत मोक्षका

सुख भी प्राप्त हो जाता है , इय (इति हेतोः) इस हेतु से, हे तिहुअणवरकप्परुक्ख (हे त्रिभुवनवरकल्पवृक्ष) हे तीनो भुवन में श्रेष्ठकल्पवृक्षसमान ऐसे, जिण जिनेश्वर देव मह-मेरे सुक्खई-सुखों को-कुण-करो ॥

मूलकाव्यम्. ३

जर जज्जर परिजुण्ण,
कण्ण नट्ठुट्ठ सुकुट्ठिण ।
चक्खु-क्खीण खएण,
खुण्ण नर सल्लिय सूलिण॥
तुह जिण सरणरसाय-
णेण लहु हुंति पुणण्णव ।

जय-धन्नंतरि पास,
मह वि तुह रोगहरो भव। ३।

(संस्कृतटीका. ३)

(जरेति) ज्वरेण जर्जराः अकिंचित्कराः। सुकुष्ठेन गलित-कुष्ठेन गलितकुष्ठेन परिजूर्णकर्णाः शटितश्रवणाः नष्टौष्ठाश्च। तथा प्राकृतत्वेन पूर्वनिपातात क्षीणचक्षुषः । तथा क्षयेण क्षयव्याधिना क्षुण्णाः कृशाङ्गाः। तथा शूलेन शल्यिताः सजातशल्याः। नरा मनुष्याः, हे जिन! तव स्मरणरसाय नेन लघु शीघ्र भवन्ति पुनर्नवाः, अत एव जगद्धन्वन्तरे पार्श्व ममापि त्वं रोगहरो भव। सरोगत्वात्कवेः सान्निपायेयं प्रार्थना ॥ ३ ॥

(भाषा टीका ३)

हे भगवन्! जरजज्जर (ज्वरजर्जराः) ज्वर से जीर्ण हुवा, तथा सुकुट्ठिण (सुकुष्ठेन) गलित कोढ़ के रोगसे, परिजुनकण्णनट्ठ (प

रिजूण्णकण्णनट्ठोट्ठाः) परिजूर्णाः—सड़गये हैं कर्ण-कान जिनके, और नष्टौष्ठाः—नष्ट होगये ओष्ठ जिनके तथा चक्खुक्खीण (क्षीणचक्षुषः) नेत्र जिनके नष्ट होगये हैं, तथा खयण-क्षय रोग से, खुस—दुर्बल हुवे. तथा सूलिण-शूलरोग से, सल्लिय-सशल्यपन को प्राप्त हुए ऐसे जो नर-मनुष्य सो हे जिण-जिन, तुह-आपके, सरणरसायणेण (स्मरणरसाययनेन-स्मरण रूप रसायन से लहु-शीघ्र, पुणणव (पुनर्नवाः) पुनः नये, हुंति-होजाते हैं इस लिये हे जयधन्नंतरि (हे जगद् धन्वन्तरे) प्राणीमात्र को रोग रहित करने में धन्वन्तरि वैद्य समान। पास हे पार्श्वप्रभु, तुह आप। मह त्ति-मेरा भी। रोगहरो-रोग को हरणकरनेवाले, भव-हो।

मूलकाव्या. ४

विज्जा-जोइस-मंत-
तंत-सिद्धिउ अपयत्तिण
भुवणऽब्भुउ अट्ठविह,
सिद्धि सिज्झहि तुह नामिण॥
तुह नामिण अपवित्तओ
वि जण होइ पवित्तउ ।
तं तिहुयणकल्लाण-
कोस तुह पास निरुत्तउ ४

(संस्कृतटीका. ४)

विज्जेति ॥ विद्याज्योतिष्कमन्त्रतन्त्राणां सिद्धयः सफली
भवनानि । विद्यामन्त्रयोश्चायं विशेषः-

इत्थि विज्जाऽभिहिया, पुरिसो मंतु त्ति तव्विसेसोऽयं ॥
विज्जा ससाहणा वा, साहणरहिओ य मंतु त्ति ॥१॥
तन्त्राणि कार्मणादीनि, अप्रयत्नेन अक्लेशेन, तथा भु-
वनाद्भुता विश्वाश्चर्यभूताः । अष्टविधाः सिद्धयः सिध्यन्ति तव नाम्ना ध्यानेनेति शेषः । अष्टसिद्धयोऽणिमादयः-
तद्यथा—अणिमा १ महिमा २ लघिमा ३ गरिमा ४ प्राप्तिः ५ प्राकाम्यम् ६ ईशित्वं ५ ७ वशित्वं ८ चेति ॥ तत्राणिमा—अणुशरीरकरणं, येन विशच्छिद्रमप्यपि विशति, तत्र च चक्रवर्त्तिभोगानपि भुङ्क्ते १ । महिमा—मेरोरपि महत्तर—

(भाषा टीका ४)

हे भगवन्! तुह आपके, नामेण—नाम से या-
ने नामस्मरण करने से, अर्थात् एकाग्रचित्त
से आपका ध्यान करने से विज्जाजोइसमंततं-
तासिद्धिउ (विद्याज्योतिर्मन्त्रतन्त्रसिद्धयः)
विज्जा-विद्या, जोइस—ज्योतिष्, मंत-मंत्र तंत-

तंत्र उनकी सिद्धिउ, सिद्धि याने सफलता, तथा भुवणब्भुउ (भुवनाद्भुताः) लोक के विषे आश्चर्यकारी, अट्ठविह (अष्ट विधा) आठ प्रकार की, सिद्धि-सिद्धियें अपयत्तिण (अप्रयत्नेन) विना उद्यम के ही, सिज्झहि (सिध्यन्ति) प्राप्त होजा ती हैं ।

प्रसंगोपात्त आठ प्रकार की सिद्धियों का दिग्दर्शन बताया जाता है-

१ अणिमा-इसके प्रभाव से प्राणी अपना शरीर बहुतही सूक्ष्म करसक्ता है, जिससे कमल के छिद्र तक में भी निकल सके इतना ही नहीं वरन चक्रवर्त्ति राजा का भोग तक वहां रह

हुवा ही जोग सक्ता है

२ महिमा-- इस्के प्रभाव से मनुष्य अपना शरीर मेरु से भी बड़ा बना सक्ता है ।

३ लघिमा— इस से जीव अपना शरीर वायु से भी हलका कर सक्ता है।

४ गरिमा—इसके प्राप्त करने से भव्यजन अपनी देह को वज्र से भी विशेष भारी करसक्ता है ।

५ प्राप्ति—इस्के प्रभाव से प्राणी पृथ्वीपर बैठा हुवा भी अपने अंगुलि के अग्र भाग से मेरु पर्वत के अग्रभाग में रहा हुवा सूर्य मण्डल तक को स्पर्श कर सक्ता है ।

६ प्राकाम्य—इस सीद्धि वाला मनुष्य जैसें पृथ्वी पर चलताहै वैसे ही जल पर चल सक्ताहै तथा जैसेजलसे डुबकी लगावे वैसेही पृथ्वीमे भी घुसकर पुनः निकल सक्ताहै, ।

७ ईशित्व—इससे पुरुष तीर्थं कर महाराज अथवा इन्द्रके सदृश तीनों लोकोंके अधिपति पनको प्राप्त कर सक्ताहै ।

८ वशित्व—इसके प्रभावसेप्राणीदेह धारी यों को अपने वश कर सक्ताहै-

तथा तुह-आपके । नामिण—नामसे । अपवित्तवि-अपवित्रभी जण-मनुष्य । पवितउ-पवित्र । होई-होजाता है, तं-तस्मात्-हेपार्श्व

नाथप्रभो ! हे तिहुअणकल्लाणकोस-हे तीनोंभु वनके कल्याणकेभंडार तुह—आपक वियोंसेउ परोक्तगुणवाले । निरुत्तउ (निरुक्त) कहे गयेहो इति ।

मूलकाव्य ५

खुद्द-पउत्तइ मंततंत-
जंताइ विसुत्तइ ।
चर-थिर-गरल-गहुग्ग-
खग्ग-रिउ-वग्ग-विगंजइ ॥
उत्थिय-सत्थ-अणत्थ-
घत्थ नित्थारइ दय करि ।
दुरियइ हरउ स पास-

देउ दुरिय करि-केसरि ॥५॥

(संस्कृत टीका. ५)

खुद्देति ॥ क्षुद्रैः परापकारिभिः प्रयुक्तानि कृतानि यानि मन्त्रतन्त्रयन्त्राणि । मन्त्रतन्त्रे पूर्वोक्ते । एकाशीत्याद्यङ्क-विन्यासो यन्त्रम् । तानि यो विसूत्रयति विफलीकरोति । तथा चराथिरगरलं जङ्गमस्थावराविषं ग्रहाश्च मङ्गलादयः, उग्रखड्गो भीषणकृपाणो रिपुवर्गश्च शत्रुसमूहस्तेषां वा तानपि गञ्जयति पराभवति । तथा दुःस्थितसार्थान् दुः-खितजनसंचयान् अनर्थग्रस्तान् निस्तारयति सुखीकरोति दयां कृत्वा स दुरितकरिकेसरी श्रीपार्श्वदेवो दुरितानि हरतु जनानामिति गम्यम् ॥५॥

(भाषा टीका ५)

जिनपार्श्वनाथ स्वामिका स्मरण । खुद्दप उत्तई-(क्षुद्रप्रयुक्तानि) क्षुद्रपुरुषों के प्रयोग याने परके अपकारनिमित्त किये हुये मंत तंत जंताई-मंत्र जंत्र तंत्रादि प्रयोग उन

सब को विसुत्तई (विसूत्रयति) निष्फल करता है और चरथिरगरल-(चरस्थिरगरल) जंगमस्थावरविषजंगमविषस-सर्पादिकादंश तथा स्थावरविष-सोमलादि जानना-तथा गहुग्ग खग्गरिउ-(ग्रहोग्रखड्गरिपु) ग्रह-नव ग्रह तथा उग्रभयंकरखड्ग-तलवारों वाले जो रिपु-शत्रु उनका जो वग्गु-वर्ग उनको विगंजई-पराभव करता है, और अणत्थ-घत्थ (अनर्थ ग्रस्तान्)-अनर्थमेपड़े हुवे तथा दुत्थियसत्थ-दुःखवाले ऐसे जो लोगउनपर दयकरि-करुणा करके, नित्थारई (निस्तारयत्ति) तारता है तथा दुरिअक्करी-केसरी-पापरूप हस्तिको दूर करने में सिंह समान ऐसे स-वे पासदेउ पार्श्वप्रभु। दुरि-

थई-दुरितानि पापों को हरउ हरो अर्थात्
हे प्रभु मेरे पापका नाशकर मुझे सुखीकरो.

मूलकाव्य ६

तुह आणा थंभेइ,
भीम-दप्पुद्धुर-सुरवर-
रक्खस-जक्ख-फणिंद-
विंद-चोरानल-जलहर ॥
जलथर चारि-रउद्द-
खुद्द-पसु-जोइणि-जोइय ।
इय तिहुअण-अविलंघि-
आण जय पास सुसामि य ॥

(संस्कृत टीका. ६)

तुह आणेति ॥ तव आज्ञा स्तम्नाति कीलयति । का-
नित्याह । भीमा भयंकरा दर्पोद्धुरा दर्पिष्ठा ये सुरवरा-
श्चात्युत्कटसुरा भूतप्रेतादयो राक्षसाश्च यक्षाश्च प्रसिद्धा एव
फणिन्द्रवृन्दानि चाष्टकुलनागकुलानि चौराश्च तस्कराः
अनलश्च वैश्वानरो जलधराश्च मेघाश्च ते तथा तान् । तथा
जलस्थलचारिणो जलचारिणो नक्रादयः, स्थलचारिणो
मृगेन्द्रव्याघ्रादयः । रौद्रा दर्शनेनापि भयंकराः क्षुद्रा
हिंसका ये पशवस्तिर्यञ्चो योगिन्यश्च भक्ताभक्तानुग्रहनि-
ग्रहकारिमन्त्रतन्त्रज्ञाः स्त्रियो योगिनश्च एवंविधा एव पुरुषा-
स्ते तथा तान् । इति हेतोस्त्रिभुवनाविलङ्घिताज्ञ जय पार्श्व
सुस्वामिन् ॥६॥

(भाषा टीका ६)

हे भगवान् ! तुह—आपकी जो आणा
आज्ञासो भीम-भयंकर, तथा दप्पुध्दुर (द-
र्पोध्दुर) गर्व करके उद्धत हुवे ऐसे जो सुरवर-
क्षुद्र प्रकृतिवाले भूतप्रेतादि देवता, तथा

रक्खस-राक्षस, जरक-यक्ष तथा फणिंद ना-
गेन्द्र (यहां आठ प्रकारके नागकुल ग्रहण
करना) इनका जो विंद (वृन्द) समूह
तथा, चौर-वस्तुहरण करने वाले, अनल-
अग्नि, जलहर (जलधर) मेघको तथा, ज-
लथलचारि-हिंसक जल तथा स्थलपर चल
ने व रहने वाले पशु, तथा रउद्द (रौद्र)
दर्शन मात्रसे ही भयावने और खुद्द-निरा-
पराधिकीहिंसा करनेवाले पशु तिर्यंच तथा
जो इणि-योगिनी (मंत्र जंत्रादि से स्वका-
र्य सिध्यर्थवश की जावे सो योगिनीयें कही
जाती हैं) तथा जोइअ-योगी उनको थंभेई
(स्तभ्नाति) स्थंभकर देती हैं याने उनकी
शक्ती को चलने नही देती इय-इस हेतु

से हेतिउअण अविलंघिआण—हे त्रिभुवन अविलङ्घिताज्ञ और हे सुसामि—हे श्रेष्ठ-स्वामिन्, हेपास-हे पार्श्वदेव, आप जय-जय वंता प्रवर्तो.

मूलकाव्य ७

पथिय-अत्थ अणत्थ
तत्थ भत्ति-ब्भर निब्भर ।
रोमंचंचिय-चारु-
काय किन्नर-नर-सुरवर ॥
जसु सेवहि कम-कमल-
जुयल पक्खालिय-कलिमलु
सो भुवणत्तयसामि,

पास मह मद्दत रिउ-बद्धु ॥७॥

(संस्कृत टीका. ७)

पत्थियेति ॥ प्रार्थितार्थाः अनर्थत्रस्ताः भक्तिभरनिर्भराः रोमाञ्चैरञ्चितो विशेषितश्चारुर्मनोहराः कायो येषां ते तथा एवंविधाः किन्न नरसुरवराः, यस्य सेवन्त क्रमकमलयुगलं किन्नरशब्देन व्यन्त भुवनपतीनामधोलोकवासिनां परिग्रहः । नरशब्देन मध्यलोकवासिनां मनुजज्योतिष्काणां सुरवरशब्देनोर्द्ध्वलोकवासिनां वैमानिकदेवानां कीदृग् क्रमकमलयुगलं मला विलकालिमलं विनाशितकलहपापं । स भुवनत्रयस्वामी पार्श्वो मम मर्द्दयतु रिपुवलम् ॥७॥

(भाषा टीका ७)

पत्थियअत्थ (प्रार्थितार्थाः) प्रार्थना किये हुवे अर्थ इच्छितपदार्थ अथा अन्य पदार्थों को छोड केवल धनकी ही वांछा किये हुवे, कारण के धन पैदा होनेपर सर्व कार्य सिद्ध हो सक्ता है वास्ते प्रथम धनही

मांगा, तथा अणत्थ तत्थ (अनर्थत्रस्ताः) अनर्थसे त्रासपाये हुवे तथा भत्तिभर निब्भर-भक्तिके समूहसे भरे हुवे (भज् धातुका अर्थ सेवा तथा क्तिन् प्रत्ययक—अर्थ प्रेम है वास्ते प्रेम सहित सेवा करने को भक्ति करते हैं) तथा रोमंचंचियचारुकाय (रोमाञ्चित-चारुकाय) विकस्वर रोमकरके सुंदर है शरीर जिनका ऐसे जो किन्नरनर सुरवर—किंनर मनुष्य तथा देवताओं मेंके श्रेष्टप्राणी, परकालियकलिमलु—नाशकर दिया कलिकाल संबंधी मल (पाप) जिसने ऐसे जसु, जिन पार्श्वनाथ प्रभु के, कम कमल जुयल (क्रम-कमलयुगलं) चरणकमलों को सेवहि सेवन करते हैं, स-वोही-भुवणत्तय सामिय-त्री भुव-

नस्वामि पास·पार्श्वनाथ प्रभु मह मेरारिउब-
लु–शत्रु सेनाको महउ (मर्द्दयतु) नाश करो,
अर्थात् मेरेराग द्वेषरूप शत्रुओं को नष्ट करो.

इस प्राकार ब द्वारों की बराबर अनु-
क्रमसे व्याख्याकी अब आगे स्तुति करते हैं.

मूलकाव्य ८

जय जोइय मण कमल
भसल भय पंजर कुंजर ।
तिहुअण जण आणंद
चंद भुवण त्तय दिणयर ॥
जय मइ मेइणि वारि
वाह जयजंतु पियामह ।

थंभणयट्ठिय पास
नाह नाहत्तण कुण मह ॥७॥

(संस्कृत टीका. ७)

॥जयेति॥ जय योगिमनःकमलभसल तथा भयपञ्जर-कुञ्जर त्रिभुवनजनानन्दचन्द्र भुवनत्रयादिनकर तथा जय मतिमेदिनीवारिवाह जगज्जन्तुपितामह स्तम्भनकस्थित पार्श्व-नाथ नाथत्वं कुरु मम इति षड्द्वाराणि ॥७॥

(भाषा टीका ८)

हे जोइय मनकमलभसल (हे योगि-मनः कमल भ्रमर) हे ! जोइय-योगिलोग, उनका जो मण-मन रूपजो कमल उसमें भसल-भ्रमर समान अर्थात् जैसे कमल के विषे भ्रमर निवास करता है तैसेही आप योगीओं को चित्त में बसे रहते हो (मन-

बचन और कायाकोजो साधता है सो योगी कहा जाता है). तथा हे नयपंजर कुंजर-नय–सात प्रकार के (आलोक नय, पर-लोक नय, आदान नय । अकस्मात् नय वेदना नय मरण नय और अपयश नय) रूपजो पंजर-पींजरे के वास्ते कुंजर–हाथी समान ! अथात् जैसे हस्ति पींजरे को अव-गणना करके तोड देता है तैसे ही आपनी नय रूप पींजरे को तोरुकर निजस्वनाव में वर्त्तते हो, तथा हे तिहुअणजणआणंदचंद (हे त्रिनुवन जनानन्दचन्द्र) हे तीनों लोक के मनुष्यों के आनंद रूपचन्द्रमा अर्थात् जैसे चन्द्रमा प्राणियोंको शीतलतासे आनंद देता है तैसेही आप अपने अलौकिकगुण

से लोगों को आनंद देते हो, तथा हे-भुवण त्तय दिणयर हे-तीनों भुवन के सूर्य (याने जैसे सूर्य अंधकार को नष्ट कर देता है तैसे ही आप अज्ञान रूपी अंधकार को नष्ट कर देते हो) जय—जयवंता प्रवर्त्तो तथा हे मइमेइणिवारिवाह (हे मतिमेदिनिवारिवाह) मई-चार प्रकार की बुद्धि (उत्पातिक वैनायिक कार्मणिक पारिणामिक) रूप मेइणि-पृथ्वि उसके लिये वारिवाह मेघ समान जैसे मेघ के वर्षने से पृथ्वि प्रफुल्लित हो जाती है तैसे ही आप-मति-रुप पृथ्वि को प्रफुल्लित कर देते हो, तथा हे जयजन्तुपियामह—हे जगत के जन्तुओं के पितामह, हे स्थंभनपुर में स्थित पार्श्वनाथ स्वामी, मइ-

मेरे पर नाहत्तण-नाथपन, कुण-करोंअर्थात् मुझ को सच्चा सेवक जानकर स्वामित्व बताओ.

मूलकाव्य ए

बहु विहु वन्नु अवन्नु,
सुन्नु वन्निउ गप्पन्निहि ।
मुक्ख धम्म कामत्थ
काम नर नियानिय सत्थिहि ॥
जं ज्झायहि बहु दरिस
णत्थ बहु नाम पसिद्धउ ।
सो जोइय मण कमल
भसल सुहु पास पवद्धउ ॥ए॥

(संस्कृत टीका. ९)

'वह्निति ॥ स योगिमनःकमलभसलः सुखं पार्श्वः प्रव-र्द्धयतु । ये मोक्षधर्मकामार्थान्कामयन्ते अभिलषन्ति ते मो-क्षधर्मकामार्थकामा बहुदर्शनस्था नरा ध्यायन्ति । यं बाह्ये-न्द्रियव्यापारान्निरुध्य मनसा । पश्यन्तीत्यर्थः । कीदृशमि-त्याह । वर्णितं प्रतिपादितम् । उपनिहिति । देश्यत्वाद्वि-दग्धैर्विद्वद्भिरिति यावत् । केषु । निज निजशास्त्रेषु आत्मी-यात्मीयदर्शन प्रतिपादकग्रन्थेषु । कीदृशं । वर्णितमित्याह । विधवर्णं वैष्णवैः प्रतियुगं विष्णोरन्यान्यवर्णत्वात् । अवर्णं माहेश्वरैः नीरूपत्वादीश्वरस्य । शून्यं बौद्धैर्विशेषमाध्यमि-कादिभिस्तन्मते बुद्धस्य शून्यरूपत्वात् । अतएव बहुनाम-भिर्विष्णुमहेश्वरबुद्धादिभिर्नामभिः प्रसिद्धं तत्त्वतः पार्श्व-नाथमेव । तथाविधनामभिस्तेपि दर्शनिनः प्रतिपादयन्ति । यत उक्तम् ॥

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धिबोधा-
त्वं शंकरोसि भुवनत्रयशंकरत्वात् ॥
धातासि धीर शिवमार्गविधेर्विधाना-
द्व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि ॥१॥

किंच–ते दर्शनिनः एवं प्रष्टव्याः । ये एते महेश्वरप्रभृतयो भवद्भिर्ध्यायन्ते ते किं सरागा नीरागा वा यदि सरागास्तर्हि अस्मदादिसमानत्वेन तेषामऽदेवत्वप्रसङ्गः ॥

सव्वेवि हु जइ जीवा ।
मेहुणसन्नाइ हुंदि वट्टंति ॥
साहारणम्मि चरिए ।
कह देवो होइ अज्झहिउ ॥१॥

अथ नीरागास्तर्हि न ते भगवतः पार्श्वनाथाद्यतिरिक्ताः । यत उक्तम् ॥

विपक्षास्ते विरक्ताश्चेत्स त्वमेवाथ रागवान् ॥
न विपक्षो विपक्षः किं खद्योतो द्युतिमालिनः ॥१॥

तत्सिद्धं योगिमनःकमलभसलो भगवान् पार्श्वनाथः॥ए॥

(भाषा टीका ९)

हे भगवन् ! मुक्खधम्म कामत्थ काम (मोक्षधर्मकामार्थ कामाः) मोक्ष, धर्म, अर्थ और काम इसकी कामनावाले, बहुदरिसणत्थ (बहुदर्शनस्थाः) नानाप्रकार के

दर्शन में रहे हुये, नर (नराः) जो पुरुष सो नि-यानियसत्थिहि (निजनिज शास्त्रेषु) " तृतीया स्थाने सप्तमी " अपने २ दर्शन के शास्त्रों में, उप्पन्निहि (पंण्डितैः) "देशीशब्दत्वात्" पंण्डित पुरुषो ने, बहुनामपसिद्धउ-बहुत-नाम करके प्रसिद्ध हुवे, कारण बहुविहुवन्नु बहुवर्णित, तथा अवन्नु, अवर्णी, तथा सुन्नु आकाशवत् शून्य वन्निउ-वर्णन किये गये हो तथा वेही लोग जं-जिस्का, ज्झायहि-ध्यान करते हैं सो- स, जोइयमणकमलभसल-योगियों के मनरूपकमल में भ्रमर समान, पास-हे पार्श्व देव, हमारे सुहु (सुखं) सुख को, पवड्ढउ (प्रवर्द्धयतु) अतिषय बढाओ. भावार्थ यह है कि परुषार्थ के अभिलाषी

सर्वदर्शनीयजनमन से अन्य २ नामकरके आ-
पही की सेवा करते हैं, जैसे श्रीमानतुंगा-
चार्यजी ने भक्तामर स्तोत्र में कहा है।

देवताओं ने तुम्हारे चरण पूजे हैं, तथा
स्वयंबुद्ध हो सबब बुद्ध तुमही हो, तीनों
भुवन के कल्याण करने से आपही शंकर
हो, मोक्ष का मार्ग जानने से तुमही धाता
(विधाता–ब्रह्मा) हो और पुरुषो में उत्तम
होने से आपही पुरुषोत्तम हो.

मूलकाव्य १०

जय विब्भल रण झणिर
दसण थर हरिय सरीरय ।
तरलिय नयण विसुन्न,

सुन्न गग्गरगिर करुणाय ॥
तइ सहसत्ति सरंत,
हुंति नर नासिय गुरुदर ।
मह विज्झवि सज्झसइ,
पास भय पंजर कुंजर ॥ १० ॥

(संस्कृत टीका. १०)

॥ भयेति ॥ भयेन विह्वलाः व्याकुलाः रणझणद्दशनाः अन्योन्यसंघट्टनेन शब्दायमानदन्ताः । चरहरियत्ति दैश्य-त्वा त्कम्पितशरीराः तरलितनयनाः विषण्णाः शून्या श्चैतन्यरहिता गद्गदगिरः सवाष्पकण्ठत्वेनाव्यक्तवाचः का-रुणिका दीनाः त्वां सहसैव स्मरन्तो भवन्ति नराः नष्टगुरूदराः इति भयपञ्जरकुञ्जर मम विध्यापय अपनय साध्वसानि भयानि पार्श्व ॥१०॥

—*—

(भाषाटीका १०)

हे प्रभो ! भयविब्भल (भयविह्वलाः) भयकरके व्याकुल तथा रणझणिरदसण (रणझणद्दशना) भरसे दांत जिनके टकराग्ये हैं तथा थरहरियसरीरय—थरथर कांप रहाहै शरीर जिनका, तथा विसुन्न (विषण्णा) खेदपाते हुवे तथा सुन्नु—चैतन्य शून्य हुवे २ तथा गग्गरगिर (गद्गदगिरः) गद्गदवाणी हो गई है जिनकी तथा करुणय करुणा करने योग्य अर्थात् आतिशयरंक, ऐसेजो नर (नराः) पुरुष सो तइ-आप को, सरंत—स्मरण करते हुवे, नासिय गुरुदर-नाश हो गया है भयंकर जलोदर जिनका ऐसे. सहसत्ति-शीघ्र ही हुंती-हो जाते हैं कारण, हे भय पंजर कुंजर-भय के पिंजरे को तोडने मेहस्तिस-

मान ऐसे हे पास—हे पार्श्वनाथ स्वामी, म ई-मैरे सज्झई—जयको विज्झवि—नाश करो.

मूलकाव्य ११

पइं पासि वियसंत
निंत पत्तंत, पवित्तिय ।
बाह पवाह पवूढ
रूढ उह दाह सुपुलइय ॥
मन्नइ मन्नु सउन्नु,
पुन्नु अप्पाणं सुरनर ।
इय तिहुअण आणंद
चंद जय पास जिणेसर ॥११॥

(संस्कृत टीका. ११)

पइ पामीनि ॥ त्वां दृष्ट्वा विकसन्नेत्रपत्रान्तेषु प्रवर्त्तितो विस्तारितो योऽसौवाष्पप्रवाहो हर्षाश्रुपूरस्तेन प्रव्यूढोऽन्तर्भूतणिगर्थत्वात्प्रवाहितः प्लावितो रूढश्चिरकालीनो दुःखदाहो येषां ते तथा सुपुलकिताः मन्यन्ते मान्यं पूज्यं सपुण्यं भाग्यवन्तं पुण्यं पवित्रमात्मानं सुरनराः इति हेतोस्त्रिभुवनानन्दचन्द्र जय पार्श्वजिनेश्वर ॥११॥

(भाषाटीका ११)

पई, (त्वां) आपको (पईका अर्थ स्वामीं भी होता है) पासि (दृष्ट्वा) देखकर वियसंत-विकस्वर हुवे जो निच्च-नेत्ररूप, पत्तंत कमलपत्र उनके विषे आप के पवित्तिय-प्रवर्त्तित होने से बाह-हर्ष के आंसुओं के पवाह-प्रवाह से रूढ-चिरकालसे लगा हुवा दुहदाह-दुःख रूपदाह पवूढ-बह गया (न-

ष्ट हो गया) अर्थात मैं वहुत कालसे दुःख रूप मैलमे ग्रस्तथा पर आज आप की शान्त मुद्रा देखने से जो हर्ष के आंसू निकले वो मानोदुःख को वहाले जाते हैं ऐसे ही प्रतीत होता है, वास्ते सुपुलइय (सुपुलकिताः) रोमां चित हुव जो सुरनर–देवता तथा मनुष्य, अप्पाणं-अपनी आत्माको मन्नु (मान्यं) पूज्य, सुउन्नु-भाग्यवंत तथा पुन्नु-पवित्र, मन्नई–मानते हैं, इय-इस हेतु से हे तिहुअणआणंदचंद–हे, त्रिभुवनमें आनंद देने वाले चन्द्र समान हे पासजिणेसर–हे पार्श्वप्रभु आप जय–जयवंता प्रवर्त्तों.

मूलकाव्य १२

तुह कल्लाणमहेसु

घंटटंकारऽवपिल्लिय ।
वल्लिर मल्ल महल्ल
भत्ति सुरवर गंजुल्लिय ॥
हल्लुप्फलिय पवत्त
यंति भुवणेवि महूसव ।
इय तिहुत्र्प्रण आणंद
चंद जय पास सुहुब्भव ॥१२।

(संस्कृत टीका. १२)

तुहेति ॥ तत्र कल्याणमहेषु घण्टा सुघोषा तस्याष्टंकारेण शब्देनाक्षिप्ताः प्रेरिताः वेल्लमानमाल्या महाभक्तयः सुर-वरा इन्द्राः गंजुलियत्ति देश्यत्वाद्रोमाञ्चिताः हल्लुप्फ-लियत्ति देश्यत्वात्त्वरिताः प्रवर्त्तयन्ति कुर्वन्ति भुवनेपि महोत्सवान् इति हेतोस्त्रिभुवनानन्दचन्द्र जय पार्श्व सुखो-द्भव सुखखाने ॥१३॥

(भाषा टीका १२)

हे प्रभु, तुह—आपके, कल्लाणमहेषु-कल्याणक के महोत्सवों में घंट-सुघोषा नामे कल्याणकादि जानने के घंट के टंकार—रणकार शब्द करके, अवपिल्लिय (अवाक्षिप्ताः) शीघ्र प्रेरणा किये हुवे अथवा टंकारव शब्द विशेषसे पिल्लिय-प्रेरित, ऐसे जो वल्लिरमल्ल—हलती हुई पुष्पमाला करके सहित तथा महल्लभत्ति—अतिषय भक्ति वाले, तथा रोमंचिल्लिय-रोमांचित हुवे, सुरवर चौसठइन्द्र सो हल्लुफल्लिय-उतावले होकर (याने अपने सर्व कार्यों को छोड़कर) भुवणेवि—इस लोकके विषेभी, महुसव—जन्मादिक महोत्सवों को पवत्तयन्ति (प्रवर्त्तयन्ति) प्रवर्त्ताते हैं इय-इस हेतुसे, हे तिहुअणआणंदचंद-हे त्रिभु-

वन आनंद चन्द्र तथा हे सुहुब्भव (हे सु-
खोद्भव) हे सुखकी खान, पास—पार्श्वदेव,
आप, जय-जयवंता प्रवर्त्तो.

मूलकाव्य १२

निम्मल केवल किरण-
नियर विहुरिय तम पहयर ।
दंसिय सयल पयत्थ-
सत्थ वित्थरिय पहाभर ॥
कलि कलुसिय जण घूय
लोय लोयणह अगोयर ।
तिमिरइ निरु हर पास
नाह भूवणत्तय दिणयर १२॥

(संस्कृत टीका. १३)

निम्मलेति ॥ निर्मलकेवलज्ञानमेव किरणनिकरस्तेन विधुरितोध्वस्तस्तमसोऽज्ञानस्य पह्नयरश्चितदेश्यत्वात्प्रकरो येनस तथा तस्य संबोधनं । दर्शितसकलपदार्थसार्थ । विस्तृतप्रभाभर । कलिना कलिकालेन कलुषिता मलिनिता ये जनास्त एव घूकलोकस्तल्लोचनानामगोचर । पापिनां भगवद्दर्शनस्याऽसुलभत्वात । इति भुवनत्रयदिनकर तिमिराण्यज्ञानानि निरु निश्चितं हर स्फोटय पार्श्वनाथ ॥१३॥

(भाषा टीका १३)

हे ! निम्मल–निर्मल, ऐसी जो केवल-केवलज्ञान रूप, किरणनियर-किरणो का समूह कर के, विहुरिय० नाश किया है, तमपहयर–अज्ञान रूपी अंधकारका समूह जिनोने ऐसे हे निर्मल केवल किरण निकर निधुरित-तमः प्रकर तथा दंसिय-दिखा दिये हैं, सयल-सकल, पयत्थसत्थ–पदार्थों का समूह जि-

नोने ऐसे हे दार्शत सकल पदार्थ सार्थ तथा हे वित्थरियपहायर—विस्तारको प्राप्त हुआ हैं कान्ती का समूह जिनका ऐसे हे प्रभु आप कलिकलुसिय-कलिकालसंबंधी जो कलुषित (पाप) उस करके सहित ऐसे जणघूयलोय-मनुष्य रूप घूघूके लोयणअगोयर-नेत्रसे अ-गोचर [अदृष्टहो] सबब हे कलिकलुषित जनघूकलोक लोचना गोचर, हे भुवणत्तय दि-णयर—हे तीनों भुवनके विषे सूर्य समान ऐसे हे पासनाह-हे पार्श्वनाथ आप निरु-निश्च-य करके मैरे तिमिरई-अज्ञानरूपी अंधकार को हर-हरो.

मूलकाव्य १४

तुह समरण जल वरिस

सित्त माणवमइमेइणि ।
अवरावर सुहुमत्थ
बोह कंदल दल रेहणि ॥
जाइय फल भर भरिय,
हरिय दुह दाह अणोवम ।
इय मइ मेइणि वारि-
वाह दिस पास मइं मम ॥१४॥

(संस्कृत टीका. १४)

॥ तुहेति ॥ त्वत्स्मरणजलवर्षसिक्ता मानवमतिमेदिनी, अपरापर नवनवा ये सूक्ष्मार्थबोधा जीवाजीवादितत्त्वज्ञानानि तएव कन्दलानि नवाङ्कुराः दलानि चपत्त्राणि तै राजतीत्येवं शीला जायते । फलभरा ज्ञानस्य, फलं विरतिरितिवचनात् देशविरत्यादिगुणस्थानानि तैर्भरिता

पूर्णा । हृतदुःखदाहा । अनुपमा निरुपमा । इति हेतोर्मतिमेदिनीवारिवाह दिश देहि पार्श्वं मतिं मम । मेघवर्षणेनापि मेदिनी सकन्दलदला फलपूर्णा हृतदाह च जायते ॥१४॥

(भाषा-टीका १४)

हे भगवन् ! तुह—आपके, समरणजल वरिससित्त-स्मरण रूप जल के वर्षा से सिंचित हुई ऐसी जो, माणव मइमेइणि-मनुष्यों की वुद्धि रूप पृथ्वि, अवरावर सुहमत्थवोह (अपरापरसूक्ष्मार्थवोध) नये २ सूक्ष्मजीवाजीवादि पदार्थों के बोध रूप, कंदलदलरेइणि—नये अंकुरे तथा पत्रों करके शोभित तथा फलभर भरिय—देशविरति तथा सर्वविरतिरूप फल के समूह से भरी हुई तथा हरियदुहदाह—नाश होगयाहै

दुःख रूप दाह जिसका तथा अणोवम उप-
मा रहित ऐसी जायई-हो जाती है इय-इस
हेतुसे हे मइमेइणिवारिवाह [हेमतिमेदि-
निवारिवाह] बुद्धि रूप पृथ्वि को मेघ समा-
न, हे पास-हे पार्श्वप्रभु मम मुझको, मई
बुद्धि दिस-दो अर्थात् मेरी मति रूप पृथ्वि
को भी उपरोक्त गुणयुक्त करो.

मूलकाव्य २५

कय अविकल कल्लाण
वल्लि उल्लूरिय दुह वणु।
दाविय सग्ग पवग्ग-
मग्ग दुग्गइ गम. वारणु
जय जंतुह जणएण,

तुह्म जं जणिय हियावहु ।
रम्मु धम्मु सो जयउ
पास जय जंतु पियामहु॥१५॥

(संस्कृत टीका. १५)

कयेति ॥ कृता अविकला कल्याणवाल्लिर्येन स तथा । उच्छिन्नदुःखवनो । दर्शितस्वर्गापवर्गमार्गः। दुर्गतिगमनवारणः । एवं जगज्जन्तूनां जनकेन तुल्यः । जनकोपि पुत्रस्य कल्याणं करोति दुःखमपनयति सन्मार्गं दर्शयति असन्मार्गप्रवृत्तिं निषेधयति । येन जनितो हितावहो रम्यो धर्मः स जयतु पार्श्वो जगज्जन्तुपितामहः । भवति हि जनकजनयिता पितामहः ॥ इति षट द्वाराणि समर्थितानि ॥१५॥

(भाषा-टीका १५)

कयअविकल कल्लाणवाल्लि (कृतविकल कल्याणवल्लिः) करी है कल्याण रूप वेल जिस

ने तथा उल्लुरियदुहवणु (उच्छिन्न दुःख-वनः) नाशकर दिया है दुःख रूपवन जिसने तथा दावियसग्गपवग्गमग्ग--दिखा दिया है स्वर्ग तथा अपवर्ग (मोक्ष) का मार्ग जिसने तथा दुग्गइगमवारणु-दुर्गती मे पड़ते हुवे केरोकनेवाले तथा जयजंतुह--जगत के प्राणिमात्रके जणएण-पिताके तुल्ल-तुल्य तथा ज--जिसने हियावहु-हितकारी तथा, रम्मु-रमणीय ऐसे धम्मु धर्म को जणिय-उत्पन्न किया है ऐसे जो, सोपास--वे पार्श्वप्रभु जय--जयवंताप्रवर्त्तो.

मूलकाव्य. १६

भुवणारम निवास-

दरिय परदरिसण देवय ।
जोइणि पूयण खित्त वाल-
खुद्दासुरपसुवय ॥
तुह उत्तट्ठ सुनट्ठ,
सुट्ठु अविसंठुलु चिट्ठहि ।
इय तिहुअण वणसीहं,
पास पावाइ पणासहि ॥१६॥

(संस्कृत टीका. १६)

॥ भुवणेति ॥ भुवनान्यरण्यानि तत्र निवासो येषां ते तथा ते च ते दृप्ताः समदाश्च एवंविधा ये परदर्शनदेवता बुद्धादयः । योगिन्यः सिद्धदुष्टमन्त्रा मानव्यः । पूतना दुष्टव्यन्तर्यः । क्षेत्रपालाः क्षेत्रनायका व्यन्तराः । क्षुद्रासुरा

दुष्टन्तुवनपत्यादयः । तएव पशुव्रजास्ते । किमित्याह त्वत्तो भवतः ४ सकाशादुत्त्रस्ताः पलायिताः । सुनष्टाः अन्तर्हिताः । सुष्ठु अतिशयेनाविसंष्ठुलं सावधानं सभय-मितियावत । तिष्ठन्ति वर्त्तन्ते । इति त्रिभुवनवनसिंह पार्श्वं पापानि प्रणाशय ॥ १६ ॥

(भाषा टीका १६)

भुवणारम निवासदरिय–संसाररूप अरण्यके अंदर निवासकरने वाले तथा दरिय-दर्पसहित ऐसेजो परदरिसणदेवय–अन्य दर्शनीयदेवता तथा जोइणि-योगिनी (दुष्टमत्रादिजाननेवाली स्त्री) तथा पूयण–पूतना (दुष्टव्यतरियें) तथा खित्तबाल–क्षेत्रपाल (क्षेत्रकेनायक व्यंतरदेव) तथा खुद्दासुरपसुवय–क्षुद्र (दुष्ट) देवता रूप–जो पशुओंका समूहसो तुह–आपसे (आ-

पके नामसे) उत्तठ-त्रासको प्राप्तहोनेसे सुनठ-अदृश्यपनसे तथा अविसंठुल-भयसहित चित्तहि-रहतेहैं अर्थात् आपकेनामस्मरणमात्रसे उपरोक्तदुष्टप्राणी तकलीफपहुचानहीसक्के-इय-इसहेतुसे हेति हुअणवणसी-हे त्रिभुवनवनसिंह (जैसेसिंहको देखकर क्षुद्रजंतु पलायनहोजाते हैं तैसेहीआपके नामसे उपरोक्त क्षुद्रप्राणी नष्टहोजाते हैं) हेपास-पार्श्वदेव मेरे पावाई-पापको पणासहि-नष्टकरो ।

॥ मुलकाव्य १७ ॥

फणि फण फार फुरंत
रयणाकर रंजिय-नहयल

फलिणी कंदल दल
तमाल-निलुप्पल-सामल-
कमठासुर-उवसग्ग-
वग्ग संसग्ग-अगंजिय।
जय पच्चक्ख-जिणेस,-
पास थंभणय पुरट्ठिय ॥१७॥

(संस्कृत टीका १७)

॥ फणीति ॥ फणो मस्तकाच्छादनं धरणेन्द्रस्य फणेषु स्फाराणि विस्तीर्णानि देदीप्यमानानि यानि रत्नानि तेषां करैः किरणै रञ्जितं नभस्तलं फलिनी प्रियङ्गुलता तस्याः कन्दलानि च नवाङ्कुराः दलानि च पत्राणि तमालानि च तरुत्वक्पत्राणि नीलोत्पलं च फलिनीकन्दलदलतमाल-नीलोत्पलानि तानीव, श्यामल। कमठासुरोपसर्गवर्गसंस-

र्गेण अगञ्जित अपराजूत । जय प्रत्यक्षजिनेश पार्श्व स्तं-म्ननकपुरस्थित । प्रत्यक्षेति साभिप्रायं षोडशनमस्कारा भगवति व्यवनिहिते कृताः सप्तदशे तु प्रत्यक्षीजूत इति वृध्दाः कथयन्ति ॥ १७ ॥

(भाषा टीका १७)

हे फणि–धरणेन्द्र के जो फण–फण के विषे स्फार–अतिश विस्तारवाले जो, रयणकर–रत्नकी किरणे उनकरके रंजिय–रंगा गया है ऐसा जो नहयल–नभस्तल उस्के विषे, फलिणि–प्रियंगुलता उस्के जो कंदल–अंकुर तथा दल–पत्ते तथा तमाल वृक्षके पत्ते तथा, निलुप्पल–श्यामकमल के सदृश सामल-श्याम मूर्ति तथा हे कम-ठासुरउवसग्गवग्गसंसग्गअगंजिअ–कमठ-नामाजो असुर उसने किये जो उपसर्ग

उनके समूहोंसे अगंजिअ-पराजवको-प्राप्तनहीं हुवे ऐसे तथाहे पच्चरक जिणसेह पत्यक्षजिनेश्वर, हे थंभणयपुरहि य स्थंभ-नपुरके अंदरस्थितऐसे हे पास-हेपार्श्वप्रभो आपजय-जयवंत्ताप्रवर्त्तो

॥ मूलकाव्य ॥ १७

मह मणु तरलु पमाणु,
नेय वायावि विसंठुलु ।
नेय तणुरवि अविणय-
सहावु अलस-विहलंथलु ॥
तुह माहप्पु पमाणु।
देव कारुण्ण-पवित्तउ ।

इय मइ मा अवहीरि,
पास पालिहि विलवंतउ
॥ १७ ॥

(संस्कृत टीका १७)

॥ महेति मम मनः प्रसादे नैव प्रमाणं । यतस्तरलं । वाचावि नैव यतो विसंष्टुला । नच तनुरपि, अविनयस्वभावा अविनीता आलस्येन विशृङ्खला परवशा। च यतः किंतु तव माहात्म्यं प्रभावः प्रमाणं देव कारुण्येन पवित्रं युक्तमिति हेतो मां मामवधीरय प्रसादकरणे मा अवगणय। किंतु पालय रागाद्यरिभ्यो रक्ष विलपन्तमिति दुःखित्वेन परिदेवमानम् ॥ १८ ॥

(भाषा टीका १८)

हे प्रभु, मह-मैरा, मणु-मन प्रसन्न है ऐसा, पमाण-प्रमाण, नेय-नहीज है

कारण के वह, तरलु चंचल है. वायावि वाणिजी योग्य हैं ऐसा प्रमाणजी नहीहै कारणके वोजीविसंठुलु-अव्यवस्थित है याने चलविचल है तथा, तणुरवि शरीर जी, अविणयसहावु—अविनीतस्वजावहोने से अलसविहलंघलु-आलस करके वशवर्त्ती नही रहा अर्थात् परवशहो गया तथापि तुह आपका महाप्पु—महात्म्यतो पमाणु--प्रमाणिक हीज हे अर्थात् मेरे मन वचन काया तो अप्रमाणिक हैं परन्तु आपके प्रमाणिक महात्म्यकरके आपमुझ पर कृपा करो इतिजावः, इय-वास्ते हे कारुणपवित्तउ-आपकी बहुत करुणा करके मै पवित्र हुं ऐसे हे प्रजु मई-मैरीमाअवहीरई-अवगणना मत करो

तथा हे पास—पार्श्वप्रभु, विलवंतउ विलाप करते हुवे मुझको, पालहि—पालो ।

(नीचली गथा मे यह बताना चहाते हैं के अन्य देवादिक को स्मरणकर तथा अन्य तरहसे मैने बहुत दुःख पाया है.

मूलकाव्य १ए

किंकिंकप्पिउ नेय
कलुणु, किंकिं व न जंपिउ ।
किं व न चिट्ठिउ किठु,
देव दीणयमऽवलंबिउ ॥
कासु न किय निप्फल्ल,
लल्लि अम्हेहि उहत्तिहि ।

तहवि न पत्तउ ताणु,
किंपि पइ पहु परिचत्तिहि
॥ १ए ॥

(संस्कृत टीका १ए)

॥ किंकिमिति ॥ धिंकिंकल्पितं चिन्तितं नैव मनसा करुणं दीनं । किंकिंवा न जल्पितं वाचा । किंवा न चेष्टितं क्लिष्टं सकष्टं देव दीनतामवलम्ब्यकायेन कस्याग्रतो न कृता निष्फलालल्लिंत्ति चाटुकाराः अस्माभिः दुःखार्त्तैस्तथापि न प्राप्तं त्राणं शरणं किमपि त्वया प्रभो परित्यक्तैः ॥ १ए ॥

(भाषा टीका १६)

हे भगवन्, दुहत्तिहि–दुःख से पीकित ऐसे, अम्हेहि-हमने भी, किं किं कप्पिउनेय-क्या क्या कल्पना नही की अर्थात् दुःख

मिटाने को मन से सब कुछ बिचार लिया तथा कलुण-दीन शब्द से किं किं न जंपिउ-क्या क्या नही बोले अर्थात अन्यदेवों से भी बहुत से दीन वचनो से प्रार्थना की व-तथा किट्ठ-क्लेश सहित ऐसा किं किं-क्या क्या न चिट्ठिउ-काया करके चेष्टा नही की अर्थात् काया से कष्टकारी सर्व आचरण किये तथा हे देव दीणयं-दीनताको अवलंबिउ-अवलम्बनकरके केसु-किस पुरुष के सामने निप्फल-निष्फल, लट्ठि--चाटुयुक्ति (नम्रता पूर्वक प्रिय वचन बोलना) नकिय--नहीकी अर्थात् करीज तहवि-तथापि हे प्रभो! पई आपने हमको परीचत्तिही--परीत्याग कर दिया वास्ते किंपि-कुछभी, ताणु--रक्षण

(शरण) नपत्तउ-नही पाया अर्थात् मन वचन, काया करके सर्व देवों की विनन्ती की परन्तु आपकी कृपा नही होने से कोई जी कार्य सिद्ध नही हुवा.

मूलकाव्य २०

तुह सामिउ तुहु माय-
बप्पु तुहु मित्त पियंकरु।
तुहु गइ तुहु मइ तुहुजि,
ताणु तुहु गुरु खेमंकरु॥
हउ डुहभरभारिउ-
वराउ राउ निब्भगह।

लीणउ तुह कम-कमल-
सरणु जिण पालहि चंगह ॥२०॥

(संस्कृत टीका. २०)

॥ तुहइति ॥ त्व स्वामी, त्वं माता, त्व मित्रं, प्रियंकरं, त्वं गतिरनन्यसध्यरक्षोपायः, त्व मतिः त्वंमेव त्राणं, त्वं गुरूः क्षेमंकरः । अहं पुनर्दुः खनग्नातिगः वराको रङ्कः, राजा ठकुरः चङ्गानां उत्कृष्टानां निर्भाग्यानां, लीन आश्रितस्तव कमकमलमेव, शरणं आतो जिन पायल ॥ २० ॥

(भाषा टीका अंक २०)

हे भगवन्त, तुह–आप सामि–स्वामि (पति) हो तथा तुह–आपहीज, मायबप्पु-माता पिता हो तथा तुह-आपहीज. पियंकरु-प्रीतकारी मित्त-मित्रहो तुह आपहीज गई-

गतिहो (अर्थात आपके शरण से ही गति हो सक्ती है नान्यथा) तुह–आपहीज मई-बुद्धिहो अर्थात् शर्व पदार्थों का जानपन आप की कृपासे हीजहोसक्ता है तथा तुहजि-आपहीज, ताणु–सरणरूपहो तथा तुह–आपहीज खेमंकरू–कल्याणकरनेवाले गुरू-गुरू हो (अथवा गु-अंधकार को रू-रोकने वाले हो अर्थात् अज्ञानको नाश करने वाले हो) तथा हउं–मै दुहभरभारिउ दुःख भर भारितः) दुःखरूपी भारसे भारित–दबाया हुवा हुं इसही वास्ते, वराउ–रंकहुं तथा चङ्गह–उत्कृष्ट ऐसा जो निष्भग्ग-दौ-भागियोंका, राउ–चक्रवर्तीहु अर्थात् निकृष्ट निभागीहुं तथापि, तुह–आपको, कम-

कमलसरणु–आपकी कमलरूपशरणमे ली- नह-लीनहुवा हुं वास्ते हे जिण–हेप्रभु, पालहि–मेरीरक्षा करो.

कदाचित कोई कहे के भगवन् तो वीतराग है वास्ते इन्होने तो किसीकाउ पगार नही कियासो तुम क्यों वृथा स्तुति करते हो तो उस्के उत्तर मे अगलीगा था कहते हैं.

मूलकाव्य २१

पइ किवि कय नीरोय,
लोय किवि पाविय सुहसय
किवि मइमंत महंत
केवि किवि साहियसिव पय

किवि गंजियरिउवग्ग,
केवि जसधवलिय भूयल ।
मइ अवहीरहि केण,
पास सरणागयवच्छल ॥२१॥

संस्कृतटीका २१

पइमिति ॥ त्वया केपि कृता निरोगा लोकाः । केपि प्राप्तसुखशताः । केपि मतिमन्तो । महान्तः सर्वोत्तमाः केपि । केपि साधितशिवपदाः । केपि गञ्जितरिपुवर्गाः । केपि यशोधवलितभूतलाः कृता इति प्रथमपदवत्सर्वत्र योज्यम् ' । मां पुनरवधीरयसि अवगुणयसि केन कारणे न पार्श्व शरणागतवत्सल ॥ २१ ॥

(भाषा टीका २१)

हे भगवन् ! पई (त्वया) आपने किवि-कितनेक लोय-लोगोको नीरोय-निरोगी कय-

किये तथा किन्नि-कितनोकको पाविय सुह-सय (प्रापित सुखशाता) सुखशाताकी प्राप्ती-कराई किवि-कितनेकको मइमंत-बुद्धिमन्त तथा महन्त-श्रेष्ठ किये तथा केवि-कितनोकको साहियशिवपय-शिवपद सधाया अर्थात् मोक्षदिया, किवि-कितनोकके गंजियरिउवग्ग-शत्रुओकेसमूहकोनष्ट किये तथा केवि-कितनो कके जस-यशसे धवलियभूयल--भूतल उज्वलकराया, याने संसार मेयशकीर्तिफैलाई, वास्ते हे सरणागयवच्छल (हेशरणागतवत्सल) शरणमेआयेहुवेकी-रक्षा करनेवालेऐसे हेपास--हेपार्श्वप्रभु मइ मुझे, केन-किसकारणसे अवहीरिई-तिरस्कारक तेहो

आगेकीगाथामे येबताहै के हे भगवन् मेरी अवगण ना करने का आपमे कोइ नी कारण नही है

मूलकाव्य २२

पच्चुवयारनिरीह,
नाह निप्पन्नपओयण ।
तुह जिण पास परोव-
यार-करणिक्कपरायण ॥
सत्तु मित्तसमचित्त-
वित्ति नयनिंदय-सममण ।
मा अवहीरिय उजुग्ग-
उवि मइं पास निरंजण ॥२२॥

(संस्कृत टीका २३)

॥ पच्चुवयारेति ॥ प्रत्युपकारे निरीह निराकाँक्ष नाथ निष्पन्नप्रयोजन त्वं जिनपार्श्व परोपकारकरण एकस्मिन् परायण एकतान शत्रुमित्रसमचित्तवृत्ते नत-निन्दकसमनः मा अवधीरय अयोग्यमपि मां पश्य निरञ्जन निष्पाप ॥ २२ ॥

(भाषा टीका २२)

हे भगवन्! पच्चुवयारानिरीह (प्रत्यु-पकारनिरीह) परायाउपगारकरके उस्की फलप्राप्ती कीआकांक्षारहित, तथा निप्पन्न-पओयण--सिद्धहोगयाहै संसारकेअन्तकरने के रूपप्रयोजनजिनकातथा परोवयारकरण-णिक्कपरायण—परोपकारकरनेमे कुशल तथा सत्तुमित्तसमचित्तवित्ति—शत्रु और मित्रपर-समभावरखनेवाले ? नयनिंदियसममण,

नय—नमस्कारकरनेवाले तथा निंदिय—
निंदाकरनेवाले पर सममण—समानमन
रखनेवाले हेजिणपास—हेपार्श्वजिनेश्वर ।
तुहआप । अजुग्गओविमई—मुझअयोग्यको
माअवहीरिय—मतअवगणो तथा हेनिरंज-
ण--पापकर्मरूपअंजनकरकेरहितहेप्रभुमुझको
पास--देखो अर्थात मुझपरकृपादृष्टिकरो!नकि
मुझको-तजो क्योंके आपनिरंजनहोसो आप
हीकी कृपासेपारहोऊंगानाकिअन्य रागद्वे-
षादिसहितदेवोंसे

आपकीप्रसन्नतामेहींजसर्वसिद्धिरहीहुई
है ऐसाभावआगेकीगाथामेबताते हैं

मूलकाव्य २२

हन बहुविहउह तत्त-

गउ तुह डह नासण परु ।
हउ सुयणह करुणिक-
ठाणु तुह निरु करुणापरु ॥
हउ जिण पास असामि-
सालु तुहु तिहुअण-सामिय
जं अवहीरहि मइं,
झखंत इय पास न साहिय २३

(संस्कृत टीका. २३)

हउ इति ॥ अहं बहुविधदुःखतप्तगात्रः त्वंपनर्दुःखना-
शनपरः । अह सुजनानां करुणकस्यानं दयापात्रं त्व नि-
रु निश्चितं करुणाकरः । अहं जिन पार्श्व अस्वामिशालो
निनाथः त्वं त्रिभुवनस्वामी । एवमपि सति यदवधीरयासि
मां विलपन्तं इदं पार्श्व न शोभितं नशोभनम् ॥ २३ ॥

(भाषा टीका ९३)

हे भगवन् ! हउं—मै, बहुविह दुहतत्तग-तु—अपने शरी के सर्व गात्रोंमे दुःख तप्त हो गया हुं अर्थात् मेरे रोमश्मे दुःख भरा हुवा है, और आप दुहनासणपरू—दुःख नाश करने मे तत्परहैं; तथा हउं--मै, सुयणह-सज्जनो को करूणिकठाणु--करुणा करने का स्थान हुं और तुह—आप, निरू—निश्चय करके, करुणापरु--दया बताने मे तत्पर हो अर्थात् दयामय मूर्त्ति हो. तथा हे जिण-पास—हे पार्श्व जिन हउं--मै असामिसाल—स्वामिपनकरके रहित हुं और तुह--आप तिहुअणसामिय--तीनों भुवनके स्वामी हो सो इतने आपमे विशेषण होते हुवेभी जो, झखंत--विलाप करते हुवे, मैरी अवहीरहि-

अवगण ना करते हो सो हेपास-हेपार्श्व प्रभु इय--यह बात आपको, नसोहिय--नही शोभती है. इति ॥

हे भगवन् ! कदाचित् अयोग्य जान कर आप मैरी अवगण ना करते हो तो पण आपको युक्त नही क्योंकि

मूलकाव्य २४

जुग्गाऽजुग्ग-विभाग,
नाह नहु जोयहि तुह सम ।
भुवणुवयार-सहाव-
भावकरुणारस सत्तम ॥
सम विसमइं किं घणु,

नियइ भुवि दाह समंतउ ।
इय डहिबंधव पास-
नाह मइ पाल थुणंतउ ॥२४॥

(संस्कृत टीका २४)

जुग्गाजुग्गोति ॥ योग्यायोग्ययोर्विभागं भेदं नाथ नैव गवेषयन्ति त्वत्समाः भुवनोपकारस्वभावो भावोऽभिप्रायो येषां ते । तथा करुणारसेन सत्तमाः श्रेष्ठाः एतदेव दृष्टान्तेन समर्थयति समविषमाणि किं पश्यति घनोमेघः पृथिव्यां दाहं शमयन इति दुः खिनां बान्धव पार्श्वनाथ मां पालय-स्तुवन्तम् २४

(भाषा टीका २४)

हे भुवणुवयारसहावभाव—संसारपर उपकार करने के स्वाभाविक अभिप्रायवाले तथा, करुणारससत्तम—दयारस करके श्रेष्ठ ऐसे, हेनाह—हेस्वामिन्, तुहसम—आपके

समान् पुरुष जुग्गऽजुग्ग—योग्या योग्य(यह योग्य है यह अयोग्य है ऐसे भाव) नहु-नहीज जोयही--देखते हैं कारणके उपकारकरने वाले बडे पुरुष यह नही देखते है के इस पर उपकार करु और इस पर नही करुं जैसे ? भुवि--पृथ्वी के विषे, दाह--दाहको समंत--शमन करने वाला जो घणु--मेघ सो समविसमइं--समान तथा ऊचिनीची जमी-नको नही देखता है अर्थात् सर्व जगे बराबर वृष्टि करता है. इय--इस हेतु से, दुहिवंधय--दुःखी जनोंको बांधव समान हेपासनाह—हे पार्श्वनाथ, थुणंतउ—स्तुति करते हुवे ऐसे मइ-मुझको पाल-पालन कर अर्थात् मेरा रक्षण कर.

आगे की गाथा मे यह भाव बताते हैं के जो योग्या योग्य का आपको खयाल करना पडता हो तौभी मै तो करुणा करने योग्य हुं ।

मूलकाव्य २५

नय हीणह हीणयु,
सुयवि अन्नुवि किवि जुग्गय।
जं जोइवि उवयार,
करहि उवयार-समुज्जय ॥
हीणह हीणु, निहीणु,
जेण तइ नाहिण चत्तउ।
तो जुग्गउ अहमेव,

पास पालहि मइं चगउ । २५ ।

(संस्कृत टीका. २५)

नयेति ॥ नच दीनाना दीनतां मुक्ता अन्यापि काचिद्यो-
ग्यता भवति यां गवेषयित्वा उपकारं कुर्वन्ति उपकारसमु-
द्यता महन्तः । अहंच दीनेभ्योपि दीनः निहीनो निः
सत्त्वो येन कारणेन त्वया नाथेन त्यक्तः ततोऽतिदीनत्वा-
द्योग्योहमेवेति पार्श्वे पालय मां चङ्गं भद्रं यथाभवति
तथा ॥ २५ ॥

(भाषा टीका २५)

हे भगवन्, उवयार समुज्झय-उपकार करने
मे उद्यमवंत ऐसे जो महा पुरुष सो भँ--जिस
योग्यता की जोइवि–गवेंषणाकरके उवयार-
उपकार करई-करते हैं वह जुग्गय–योग्यता
दीणह-दीनोंकी दीणयुं-दीनता को मुयवि-
छोमके अन्नुवि–अन्य किवि-कोइभी नय-

नहीज है अर्थात दीनों के सिवाय अन्य उपकार करने को स्थान नही है और. भैदीणहदीण—मै रंक से भी दीन हुं तथा निहीण,-अतिशय निर्बल हुं तथा नाहेणतई-आपनाथसे, चत्तउ-त्याग किया गया हुं जेण-वास्ते, अहमेव--मे हीज, जुग्गउ-कृपा करने के योग्य हुं, तो कारण-हे पास—हे पार्श्वदेव चंगउ जैसे बने वैसे मइ—मैरी पालहि अर्थात् रक्षा करो.

मूलकाव्य २६

अह अन्नुवि जुग्गय वि-
सेसु किवि मन्नहि दीणह ।
जं पासिवि उवयारु,

करइ तुह नाह समग्गह ॥
सुच्चिय किल कल्लाणु,
जेण जिण तुम्ह पसीयह ।
किं अन्निण तं चेव,
देव मा मइ अवहीरह ॥ २६ ॥

(संस्कृत टीका. २६)

अर्हेति ॥ अथान्यमपि योग्यताविशेषं कमपि लघुकर्मत्वा-दिकं मन्यमे दीनानां य योग्यता विशेषं दृष्ट्वा उपकारं करोपि त्वं नाथ समग्राणां एवं तार्हि स एव योग्यताविशेषः किल कल्याणं जडं येन जिन यूयं प्रसीदथ किमन्येन तमेव योग्यताविशेषं देव कुरुतेति शेषः मा मामवधीरयत ॥२६॥

(भाषा टीका २६)

हे भगवन् अह अब-जो मुझसे जादे इस विषय का अन्नुवि-अन्यमे भी जुग्गय-योग्य

ता विशेष किवि-कोई भी मन्नहि-मानते होतो हे नाह-हे नाथ समग्गह-समग्र दोणह-रंक पुरुषों की जं-जो योग्यता विशेष उस्को पासि वि-देख कर भी तुह आपजो उवयार-उपगार करई-करते हो तो हे जिण-हे जिनेश्वरदेव जेण जिस करके तुम्ह-आप पसीयह-प्रसन्नहो वो सुच्चिय-वोहि योग्यता किल-निश्चय करके कल्लाण कल्याण कारी है. अन्निणाकिं-अन्य से क्या प्रयोजन है वास्ते देव-हेदेव तंचेव-आपहीज योग्यता को बनाओ परन्तु मइ-मुझको मा अवहीरह (मा अवधीरत) मत त्यागना इति.

मूलकाव्य २७

तुह पत्थणा न हु होइ,

विहह्लु जिण जाणउ किं पुण ।
हउ उक्खिय निरु सत्त-
चत्तदुक्कहु उस्सुयमण ॥
तं मन्नउ निमिसेण,
एउ एउवि जइ लब्भ ।
सच्चं जं भुक्खिय व-
सेण किं उंबरु पच्चइ ॥ २७ ॥

(संस्कृत टीका २७)

तुहेति एव प्रार्थना विफला नैव भवतीतिजिन जानामि किं पूनरहं दुः खितो निरु निश्चितं सत्वत्यक्तो निः सत्वः दुक्कहुत्ति देश्यत्वादरोचकीदुरञ्जनीयः उत्सुकमनाः फलं प्रतिलोलुपः तेन का-रणेन मन्ये निमेषेण आक्षिपक्ष्मसंको-

चमात्रेण इदमिदमपि शुध्दज्ञानचारित्रं केवलज्ञानापवर्ग-लक्षणं यदि लभ्यते एवं च सत्यमिदं यत-बुभुक्षितवशेन-किमुदुम्बरः पच्यते फलति । अयमाभिप्रायः । यथा अव-श्य स्वकाले पक्ष्यमाणमपि उदुम्बरं कश्चित् बुभुक्षातरालि-तत्वादकालेपि फलं प्रार्थयते तथाऽहमपि समयेऽवश्यमी-हितं करिष्यन्तमपिजवन्तं अतिदुःखितत्वादधूनैव प्रार्थ-ये ॥ २७ ॥

(भाषा टीका २७)

जिण-हे जिन जाणउ-मै जानता हुं के तुह आपकी पत्थण-प्रार्थना जो किजावे वो विहलुं-निष्फल नहु-नहीज होइ–होती है तो पुण–फिर हउ–मै किं–क्या निरू–निश्चय करके दुक्खिय–दुःखीरहुंगा अर्थात् आपकी प्रार्थना से मैरा दुःख निश्चय करके चला जावेगा वास्ते तं-उस बात को, मन्नउ-मैं मानता हुं के, सत्त-चत्त-पराक्रम रहित तथा, दुक्कउ-रोगा दिकसे

दुःखी (जो बीमार अशक्त होवे, जिस्को अन्नादिकमे अरुचि होवे मात्र रोग नि-वृत्ति फलकी इच्छा से औषधलेता हो) तथा उस्सुयमण-फल प्राप्ति के अंदर उत्सुक ऐसा पुरुष, जइ-यदि, ऐसा मानले के, निमिसेण क्षणमात्रमे मुझको एव एउवि-अमुक अमुक फल, लब्भई-मिल जायगा तो पुर्व मे कया हुवा क्षण मात्र मे प्राप्ति रूप फल सच्चं-सत्य हो जावे अर्थात् ऐसे दुःखी को ज्ञान दर्शन चारित्ररूप मोक्षफल प्राप्ति अति शीघ्र हो नहीं सक्ती; क्रमशः होती है क्योंके जं–जैसे तुरिअयवसेण–शीघ्र भोजन करने की इच्छा वाले के लिये किं–क्या, उंबरु (औदम्बर) कठरेके फल, पच्चइ–पक जाते हैं अर्थात्

नहीं ज पकते काल पर ही पकेंगे तैसे ही
अति शीघ्रता से भी मोक्षही मिलसक्ता
भवस्थितिकापरिपाक होने से ही मिलेगा ।

मुलकाव्य २८

तिहुअणसामिय पास-
नाह मइ अप्पु पयासिउ ।
किज्जउ जं निय रूव-
सरिसु न मुणउ बहु जंपिउ ॥
अन्नु न जिण जगि तुह,
समोवि दक्खिन्नु दयासउ ।
जइ अवगन्नसि तुहजि

अहह कह होसु हयासउ २७

(संस्कृत टीका २७)

तिहुअणेति ॥ एवं तावत्त्रिभुवनस्वामिन् पार्श्वनाथ मयात्मा प्रकाशितः । स्वदुःखं निजमनीषितं च निवेदितमितिभावः । ततश्च क्रियतां यन्निजरूपसदृशं आत्मीयस्वजावोचितं यतो न जानामि बहु कथयितुं । ननु अन्यं कमपि कमपि प्रार्थयसे अत आह । अन्यो न जिन जगति त्वत्समोऽप्यास्तामाधिक इत्यपेरर्थः दाक्षिण्य दयाश्रयः ततो यद्यवगणयिष्यसि त्वमेव तदा अहहेतिखेदे कथं भविष्यामि हताशको निष्फलमनोरथः ॥ २७ ॥

(भाषा टीका २७)

हे तिहुअणसामिय—हे त्रिभुवनस्वामी, पासनाह—पार्श्व नाथ, मइ--मैने, अप्पु--मेरा, जितना दुःख तथा मनोकामना थी सो सर्व, पयासिउ---प्रकाश किया अर्थात् निवेदन कर दिया; जं--वास्ते अब, बहु--बहुत, जंपिउ

कहना न मुणउ--नहीं जानता हुं कारण,
नियरूवसरिसु--अपने स्वभावके सदृश अ-
र्थात् जैसा आपको योग्य लगे वैसा मुझको
किज्जउ--करो हे जिण--हे जिन् जग्गि--जगत
में आप, दक्खिन्नुदयासहु--दयावंत कहे गये
हो अर्थात् जगत में विशेष दयावान् कोई
भी नहीं है वास्ते तुह--आपके, समो वि--
तुल्य, अन्नु--अन्यपुरुष, न--नहीं है सो
जइ--यदि, तुहतो जि--आपही मेरी, अवग-
न्नसि--अवगणना करोगे, अहह--अरेरे,
(खेदकारकशब्द) हयासउ-हताशहुवा जो
मैं सो मेरा कह--क्या, होसु--होगा--अर्थात्
मेरे क्या हाल होंगे वास्ते हे प्रभु ! अवश्य
मेरा कार्य सिद्ध करना ।

अब श्री अभयदेवसूरिजी महाराज स्तु-
ति करते २ इतने मग्न हो गये के नेत्रों के प-
लक बंधकरमानोसाक्षात् पार्श्वनाथस्वामीको
स्वप्नमेंन देखते हों वैसा भाव लाकर कहते हैं,

(मूलव्य १९)

जइ तुह रूविण किणवि
पेय पाइण, वेलवियउ ।
तुवि जाणउ जिण पास,
तुम्हि हउं अंगकिरिउ ॥
इय मह इच्छिउ जं न,
होइ सा तुह ओहावणु ।
रक्खं तह निय कित्ति

णेय जुज्जइ अवहीरणु ॥ २६ ॥

(संस्कृत टीका २९)

जइ तुहेति ॥ यद्यपि त्वरूपेण केनापि प्रेतप्रायेणऽन्यन्त-रेण पार्श्वयक्षादिना पार्श्वनाथो मयाऽद्य साक्षाद्दृष्ट इति धश्चितः; तथापि जानम्यहं जिन पार्श्व युष्माभिरहमङ्गी-कृतः इति हेतोर्ममेप्सितं यन्न भवति स्म तत्राऽपहापना ला-घवं ततो रक्षतो निजकीर्तिमाश्रितवत्सलो भवानिति प्रसि-द्धिः नैव तव युज्यतेऽवधीरण मदवगणना ॥ २९ ॥

(भाषा टीका २६)

हेजिणपास--हेपार्श्व जिनेश्वर, जइ—यदि तुह--आपके। रूविण—रूप करके, किणवि—किसी भी प्रेतप्रायने अर्थात् पार्श्व नामा यक्षादिकने अथवा कोई व्यंतर देवने, मुझको, वेलविउ--ठग लिया है तहवि, तथा-पि मुझको यही भानहुवाके, तुहवि-आपनेही

हउ--मेरा, अंगीकरिउ अंगीकार किया है
ऐसा जाणउ जानता हुं, इय इस हेतु से,
यह मेरा, इच्छिउ--इच्छित कार्य, जं--जो न
होइ नहीं होगा, सा वह, तुम्ह उहावण,
आपकी अपभ्राजना याने लघुता है, वास्ते,
नियकित्तिय अपनी कीर्ती ररकंतह रक्षा करते
हुवे आपकी, अवहीरण, अपकीर्ती जुज्जई
योग्य णेय--नहींजहै अर्थात् मैने तो साक्षात्
आपरूप देखे वास्ते जो मेरा इच्छित पूर्ण
न हो तो उसमे आपकी लघुता नजर आवेगी
अर्थात् आपकी लघुता कभी हुई नहीं सो
आप अवश्य मेरा कार्य सिद्ध करो ।

अब अन्त म ग्रंथकर्त्ता स्तुति करते है ।

(मूलकाव्य ३०)

एह महारिय जत्त,
देव इहु न्हवण महुसउ।
जं अणलिय गुणगहण,
तुम्ह मुणिजण अणिसिद्धउ॥
एम पसीह सुपास-
नाह थंभणय पुरट्ठिय।
इय मुणिवरु सिरि अभय-
देउ विन्नवइ अणिंदिय॥३०॥

(संस्कृत टीका ३०)

एयेति॥ एषा मदीया यात्रा देव एष स्नानमहोत्सवः यदनलीकगुणग्रहणं स्तवनं कृतमिति शेषः युष्माकं मुनिजनाऽ

निषिद्धं पाप्मनोऽन्यस्यकस्यापि राजादे र्गुणग्रहणं साधू नां सर्वथैव निषिद्धं एवं सति श्रीपार्श्वनाथ प्रसीद स्तम्भ- नकपूरस्थित इत्येवं मुनिवरः श्री अभयदेवसुरिर्निजाङ्गविव- रण करणनन्दितसूरिसूरिर्विज्ञपयति अनिन्दितः त्रिलोक- लोकैः श्लाघितः प्रशंसितः ॥ १० ॥ इति श्रीजयतिहु- अणवृत्तिः समाप्ता ॥

हे देव—हेप्रभु, एह—यह, महारिय—मैरी, जत्त-यात्रा तथा—इहु—यह, न्हवण महुसव— स्नात्र महोत्सव, तथा जं—जो, यह आ- पका, स्तोत्र मुणिजणअणी सिद्धिओ—मुनि- जनोने भी जिसका निषेध नही किया ऐसा, अणलियगुणगहण (अनलीक गु- णग्रहणम्) सच्चेगुणो का स्थान हैं वास्ते हे प्रभु पसीय—प्रसन्नहोवो अर्थात् जो राज कथा दि होती तो यह स्तोत्र मुनिजनोके

योग्य नही रहता कारण जव मुनिजन भी इस्का पाठ निरन्तर कर सक्के हैं तो ग्रहस्थको तो अवश्य करनाहीज चाहिये इति भावः तथा हे सुपासनाहथभणयपुरछिय हे स्थाम्भनपुर (खमाच) मे स्थित ऐसे पार्श्व प्रभु ("स्थंभनपुर मे स्थित," ऐसा वाक्य कहने से यह मालुम होता है के उन्होने पार्श्व नाथ स्वामी को उसी वख्त वहां प्रतिष्टित किये थ) इस प्रकारसे, आणदिय–त्रिलोकमे आनंदित ऐसे इस स्तोत्र की रचना करके अन्तमे। मुणिवरू–मुनिवर–सिरि अभयदेउ–श्री अभयदेवसूरि महाराज आपकी, विन्नवइ–विज्ञापना करते हैं

इति श्री खरतगच्छ गगनाम्बरमणिः

नवाङ्गीटीकाकार श्री अनयदेवसूरिजी विर-
चितश्री जणतिहुअणस्तोत्र तदुपरी, जैन
क्षत्रीय गौफ़वंसावतंस रतलाम निवासी
श्रावक शेरसिंह रचित नाषा टीका सम्पू-
र्णम्. श्रीरस्तुः

मंगलं नगवान वीरो, मंगलंगौतम
प्रनु ॥ मंगलं स्थूल नद्राध्या, जैनधर्मोऽ
स्तु मंगलम् ॥ १ ॥

॥ अथ जय महायश ॥

जय महायश जय महायश जय महाभाग
जय चिंतिय सुहफलय ॥ जय समत्थ परम-
त्थ जाणय । जय जय गुरु गिरिमगुरु ॥ जय
डुहत्त सताण ताणय । थंभणय ठिय पास–
जिण ॥ नवियह नीम नयत्थु अवणंत ताणंत
गुण ॥ तुज्झति संजनमोत्थु ॥ १ ॥

वीरपुत्र श्रीआनंदसागरजीकृत

(पार्श्वप्रभु स्तवन)

लौद्रवपारनाथ कृपाकरीतारीये, तारीये दीनदयाल मयाकरी तारीये ॥ टेक ॥

मन मोहन हे बिंब आपका शोभता, दर्शन कर शुभ भाव हृदयमां भावता, ॥ लौद्रव० ॥ १ ॥ सहस्रफणाकरी नाग मुकुट शोभावता, दिव्यदेवालयमाँयप्रभुतुम दीपता ॥ लौद्रव० ॥ २ ॥ महिमा अपरंपार दिपेजिन राजकी, शोभावर्णि न जाय भव्यउपगारकी ॥ लौद्रव० ॥ ३ ॥ तुम समदेव अवर नही जगमें दीपता, करुणा रस भंडार जगत मन मोहता ॥ लौद्रव० ॥ ४ ॥

संघचतुर्विधसाथदरशमें पाविया, आनंद अंगन माय उलट मन आविया ॥ लौद्रव० ॥ ५ ॥ यात्राकरी शुद्धभाव प्रभु चित्त लिजिये, कृपाकरी मुझदुःख सकलहर लीजिये ॥ लौद्रव० ॥ ६ ॥ वीरचोवीस्से चालीस मगसर जानिये, पंचमी मङ्गलवार पक्षउज वालिये ॥ लौद्रव० ॥ ७ ॥ आनंद की अरदास प्रभु सुन लीजिये, केवल ज्ञान उदार प्रभु मुझ दीजिये ॥ लौद्रव० ॥ ८ ॥

॥ श्रीहरीसागरजी कृत ॥

॥ श्री पार्श्वप्रभु स्तवन ॥

पासजिनंद दयाल रे प्रभु भेट्या आनंद से । भेट्यां आनन्द से । पाप कटत है ॥

होतभवोदधि पाररे ॥ टेर ॥ नगर पाली में
आप बिराजे। भारवरी ऊपर साररे ॥ प्र० ॥
पीत वरण है बिम्बआपका । अहिलंछनश्री
काररे ॥ प्र० ॥ १ ॥ चौतीस अतिशय हैं
अति सुदंर। पैंतिस बाणी श्री काररे ॥ प्र० ॥
अष्टकर्मों कों दूर हटाकर। होगये मुक्ति
भरताररे ॥ प्र० ॥ २ ॥ त्रैलौक्य दीपक के
अनुग्रह से ॥ त्रैलोक्यसागर गुरुराजरे
॥ प्र० ॥ चतुर्विध श्री संघ को लेकर ॥ आये
दरशन काजरे ॥ प्र० ३ ॥ देविचंद्र ने पूजा
रचाई करवा आतमकाजरे ॥ प्र० ॥ स्वामी
वत्सल्यअति उमंग से ॥ संघ भक्ति के
काजरे ॥ प्र० ॥ ४ ऐसे प्रभुजि के ध्यान
करनसे । पाते सिव पुरवासरे ॥ प्र० ॥ दीन

दयाल कृपाकरी देना। केवल ज्ञान प्रकाश रे ॥ प्र ॥ ५ ॥ वर्ष गुनंतर है मनोहारी। उन्नि से विक्रम साररे ॥ प्र ॥ फालुनशुक्ल सप्तमी दिव से ॥ आये तुम दरबाररे ॥ प्र ॥ ६ ॥ खरतरगच्छ के माहे सोजे ॥ सुखसागरसूरिंदरे ॥ प्र ॥ तास शिष्यम गावन सागर गुरू। हरिन में चरणारविंदरे ॥ प्र ॥ ७ ॥ इत्यलम् ॥

भवदीयहितचिंतकः—

हरिसागर

मु० फलौधी